Indian J.Soc & Pol. 03(03):2016:99-102 **ISSN 2348-0084 (PRINT)**
(Special Print Issue: September, 2016) **ISSN 2455-2127(ONLINE)**

भारतीय समाजवाद और डॉ. सम्पूर्णानन्द

शुचिता पाण्डेय[1]
[1]एसो.प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, का.सु. साकेत पी.जी. कॉलेज, अयोध्या–फैजाबाद, उ0प्र0, भारत

ABSTRACT

भारतीय समाजवादी चिन्तन का स्वरूप भारत की राजनीतिक–सामाजिक परिस्थितियों में निर्मित हुआ है। राजनीतिक दलों में जो सम्बन्ध बनते–बिगड़ते रहे हैं, कई बार उनका प्रभाव भी इस पर पड़ा है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पश्चिम के समाजवादी विचार भारत में प्रवेश करने लगे थे और 1917 की रुसी अक्टूबर क्रान्ति ने भारतीय नेताओं को एक नयी प्रेरणा दी। आरम्भ में समाजवादी चिन्तन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के साथ–साथ विकसित होता रहा, इसका एक प्रमाण यह है कि समाजवादी, कांग्रेस के साथ–साथ काम करते रहे हैं। 1929 में जब जवाहरलाल नेहरू लाहौर में कांग्रेस अध्यक्ष बने तब से कांग्रेस, गांधीवाद और समाजवाद दोनों प्रभावों को साथ–साथ लेकर चलती दिखायी देती है। मई 1934 में सम्पन्न पटना के अखिल भारतीय समाजवादी सम्मेलन द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि भारत के समाजवादी एक ऐसे भारत की कल्पना करते हैं जिसमें वर्गहीन, शोषण रहित, समतावादी समाज हो। समाजवादी धारा के प्रमुखतम विचारक डॉ. सम्पूर्णानन्द ने 1934 में बम्बई में आयोजित कांग्रेस समाजवादी पार्टी के प्रथम सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। डॉ. सम्पूर्णानन्द, समाजवाद के प्रतिपादक–विचारक मार्क्स के विचारों से सहमत थे किन्तु वे वेदान्त को आधार मानते थे। वस्तुतः सम्पूर्णानन्द जी भारतीय संस्कृति–सभ्यता एवं शंकराचार्य के अद्वैतवाद से प्रभावित रहे और उन्होंने अपनी इन्हीं मान्यताओं एवं मूल्यों के आधार पर मार्क्सवादी दर्शन को स्वीकार किया। प्रस्तुत शोध पत्र भारत के इसी मनीषी राजनीतिज्ञ डॉ सम्पूर्णानन्द के राजनीतिक विचारों को समाजवाद के धरातल पर परखने का प्रयास है।

***KEY WORDS:** समाजवाद, समाजवादी समाज, वेदांत, डॉ0 सम्पूर्णानन्द*

सम्पूर्णानन्द जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय जेल में रहते हुए 'चिद्विलास' नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा है कि 'समाजवाद' नामक पुस्तक को पढ़ने के बाद गांधी जी ने लिखा था कि उनको ऐसा प्रतीत हुआ है कि समाजवादी होते हुए भी मैं मार्क्स के दार्शनिक मत का पूरा समर्थन नहीं करता, इससे प्रोत्साहित हो डॉ. सम्पूर्णानन्द ने उक्त पुस्तक को लिखने का निश्चय किया था।(सम्पूर्णानन्द, 1962 पृ013) सम्पूर्णानन्द इस पुस्तक में मार्क्स के समाजवाद सम्बन्धी आर्थिक विचारों को तो स्वीकार करते हैं पर उसके दार्शनिक विचारों से उनकी स्पष्ट असहमति भी है। भारतीय समाजवादी चिन्तन में गाँधीवाद, मार्क्सवाद और समाजवाद तीन मुख्य घटक कहे जा सकते हैं। ये तीनों कई बार आपस में टकराते हैं और उनमें तीव्र राजनीतिक संघर्ष भी होते हैं। एक ओर भारतीय समाजवादी चिन्तन पर गाँधीवादी प्रभाव है तो दूसरी ओर उसका विरोध भी। साम्यवादियों के लिए तो उसे अस्वीकार कर देना स्वाभाविक ही है क्योंकि वे वर्ग–संघर्ष और सर्वहारा क्रान्ति के बिना समाजवाद की कल्पना नहीं करते।

डॉ. सम्पूर्णानन्द का दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत को दुनिया में एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो उसे समाजवाद के मूल सिद्धान्तों और नीतियों को अपनाना होगा। वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीक की महान प्रगति ने मनुष्य को स्पष्ट ही मशीन का दास बना दिया है। आज ऐसी अर्थ–नीति की आवश्यकता है कि जो उत्पादन पर नियन्त्रण रख सके और समाज में न्याय–वितरण की व्यवस्था कर सके। विश्व की वर्तमान स्थिति में हमारे सामने कोई विकल्प नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में हमारे लिए आवश्यक हो गया है कि हम अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को ऐसा रूप दें जिससे विज्ञान और तकनीकी कौशल से अधिक से अधिक लाभ तो उठाया जा सके किन्तु मनुष्य के व्यक्तित्व की सहज स्वतन्त्रता का अपहरण न हो और अपने स्वभाव के अनुरूप अपना विकास करने के मार्ग में उसे बाधा न हो।(सम्पूर्णानन्द,1961,पृ021)

सम्पूर्णानन्द जी अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में मार्क्सवाद के प्रभाव में आये। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि 1922 के कांग्रेस के गया अधिवेशन में उन्होंने जो स्मरण–पत्र दिया था, वह मार्क्सवाद से प्रभावित था। मार्क्सवाद को स्वीकार करते हुए भी वे लेनिनवाद व सोवियत संघ के समाजवाद को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने भारतीय समाजवाद के वेदान्तवादी दार्शनिक आधार का समर्थन

1.Corresponding Author

किया। उनका स्पष्ट मत था कि समाजवाद को प्राचीन भारतीय परम्पराओं से जोड़ना चाहिए। इसलिए समाजवादी होते हुए भी वे भौतिकवाद को पूरे तौर पर स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। वे समाजवाद की एक ऐसी रूपरेखा बनाना चाहते थे जिससे देश के पुराने चिन्तन का उपयोग हो सके। इसलिए उनके मत से समाजवाद और शंकर के अद्वैतवाद में कोई विरोधाभास नहीं है। उक्त दोनों का समन्वय हो सकता है। समाजवाद पर विचार करते हुए उन्होंने 'ब्रह्म', 'धर्म', 'चेतना', 'मोक्ष' आदि ऐसे शब्दों का उपयोग किया जो समाजवाद की प्रचलित शब्दावली से बाहर के हैं। भारतीय समाजवादियों में वे एकमात्र व्यक्ति थे जो प्राचीन भारतीय परम्पराओं के सबसे अधिक निकट थे।

भारतीय संविधान में 'समाजवादी समाज रचना' शब्द तो आया, किन्तु वह समाजवाद कैसा होगा? इसका रूप क्या होगा? किस तरह आयेगा? उसकी व्यावहारिक योजना क्या है? यह कुछ भी नहीं दर्शाया गया है। उनका यह प्रश्न सदा अनुत्तरित रहा, आज भी उसी तरह अनुत्तरित है और शायद अनुत्तरित ही रहेगा। सम्पूर्णानन्द जी ने समाजवाद के सन्दर्भ में एक स्पष्ट वैचारिक भूमि अपने लेखों में रखी है। उन्होंने कहा था कि रूस, चीन या कोई देश जिस समाजवाद की बात करता है, उसकी एक व्यावहारिक योजना और पद्धति उसके पास है। एक नीति है, जिसमें उसने अपने समाजवाद को चेहरा दिया है या उसे क्रियान्वित करने में सफल हुआ है किन्तु भारत के पास इस शब्द के सिवाय कुछ नहीं है, अतः यह सिर्फ नारा है। उन्होंने चेतावनी भी दी कि इस भ्रान्तिपूर्ण शब्द प्रयोग के कारण किसी दिन यह खतरा भी सामने आ सकता है कि जो भी दल आए, वह अपने ढंग से समाजवाद की एक योजना बनाये और उसे थोपना शुरू कर दे। हो सकता है कि किसी दिन कम्युनिस्ट दर्शन पनप जाए और वह अपनी शासन पद्धति को जनतन्त्रीय और समाजवादी कहकर क्रियान्वित करने लगे। ..... वैसी स्थिति में क्या सचमुच जनतंत्र के उस समाजवादी रूप की कल्पना हो सकेगी जिसे महात्मा गाँधी ने आकार दिया था।(वही,पृ017)

भारतीय समाजवाद मानव मूल्यों से जुड़ा है जिसमें नैतिक आग्रह भी है और इस सम्बन्ध में व समाज के साथ व्यक्ति की सत्ता को भी स्वीकार करता है। यहाँ समाजवाद की स्वीकृति राष्ट्रीयता के साथ है और इस बात का प्रयत्न किया गया है कि हर प्रकार के उपनिवेशवाद का विरोध करते हुए समतावादी समाज की स्थापना की जाए। सम्पूर्णानन्द जी ने गाँधी जी के सत्याग्रह, अहिंसा, साधनों की पवित्रता तथा सत्ता के विकेन्द्रीकरण सिद्धान्त को अपने समाजवादी दर्शन का आधार बनाया।

डॉ. सम्पूर्णानन्द निर्भीक विचारक और प्राचीन चिन्तकों की परिपाटी के दार्शनिक थे। उनके विचार और भावनाएँ शाश्वत सत्य पर आधारित हैं। यदि उनके विचारों के अनुरूप समाजवादी व्यवस्था का स्वरूप गढ़ा गया होता तो भारतीय जनता की प्रगति और उन्नयन का वास्तविक रूप मुखर हो जाता। समाजवाद के प्रारम्भ में ही डॉ. सम्पूर्णानन्द ने यह शाश्वत प्रश्न उठाया जो महात्मा बुद्ध और गाँधी सभी के मस्तिष्क का मंथन करता रहा– ''संसार में इतने दुख क्यों हैं? पदार्थ की अपार राशि प्रतिवर्ष उत्पन्न होती है, मिलों से वस्त्रों के पहाड़ निकलते हैं, लाखों वर्ग कोस भूमि बसने योग्य पड़ी है, एक देश में उत्पन्न वस्तु सुगमता से दूसरे देश में पहुँच सकती है। घातक रोगों पर चिकित्साशास्त्र विजय प्राप्त करता जा रहा है। राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का अपहरण क्यों किया जाता है? युद्ध क्यों होता है? मनुष्य जल, वायु, विद्युत को अपने वश में कर सकता है, अरबों कोस दूर की निहारिकाओं को दृष्टिगत कर सकता है, अगोचर परमाणुओं की गति–विधि की गणना कर सकता है पर उसकी बुद्धि अपने जीन को संघटित क्यों नहीं कर सकती।''(दैनिक आज, 19 जनवरी 1969) यह इस बात का परिचायक है कि उनमें हृदय के निर्धन व्यक्ति के प्रति कितनी ममता थी। सम्पूर्णानन्द का समाजवाद धर्म पर आधारित था। यह धर्म कर्मकाण्डों और पुजारियों का नहीं बल्कि गीता का सर्वधर्म था जिसमें नैतिकता राष्ट्र की आधारशिला है। अतएव वे सही अर्थों में समन्वयवादी थे। उनका समाजवाद मानववादी है। मानव के प्रति उनके हृदय में टीस थी और वे केवल मानव की अच्छाई में विश्वास करते थे।

जगत् का मूल स्वरूप क्या था, इस सम्बन्ध में विचार करते हुए डॉ. सम्पूर्णानन्द कहते हैं कि मूल पदार्थ एक ही था। एक पदार्थ मानने वाला अर्थात् अद्वैतवादी सिद्धान्त भी दो प्रकार का हो सकता है। एक तो यह कि मूल पदार्थ चेतन था। यह शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदान्त का विशुद्धाद्वैतवाद है। मार्क्स इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करता। वह दूसरे प्रकार के अद्वैतवाद को स्वीकार करता है जिसमें जगन्मूल अद्वैत पदार्थ चेतन नहीं है। उसके अनुसार इस जगत् का मूल स्वरूप 'मैटर' था।(सम्पूर्णानन्द,1936 पृ076) दार्शनिक दृष्टि से 'मैटर' को परिभाषित करते हुए वह कहता है कि मैटर वह पदार्थ है, जिससे जगत् का विकास हुआ और जो स्वतः जड़ है।

जहाँ डॉ. सम्पूर्णानन्द मार्क्स के द्वन्द्ववाद के सिद्धान्त को अंशतः स्वीकार करते हुए वे मार्क्स के समान जगत् का मूल स्वरूप 'मैटर' मानते हैं वहीं शंकराचार्य के अद्वैतवाद से प्रभावित होने के कारण यह भी संशोधित करते हैं कि यह मूल स्वरूप 'मैटर' अर्थात् पदार्थ, जड़ नहीं है वरन् उसमें चेतनता का तत्व विद्यमान है। वे कहते हैं कि जगत् का मूल आधार शुद्ध चेतना

है। द्वन्द्वात्मक स्वभाव वाली प्रक्रिया के परिणामस्वरूप यह चिन्मय हुआ। आगे चलकर इसका विकास विभिन्न गुणों वाले तत्व के रूप में हुआ, जिसे हम जगत् के नाम से जानते हैं। शुद्ध अवस्था में जो ब्रह्म कहा जाता है, वही आत्मज्ञान की स्थिति में परमात्मा के नाम से जाना जाता है।(सम्पूर्णानन्द,1961, पृ003) जीवधारियों में, उसी ब्रह्म का परमात्मा के रूप में अभिव्यंजन हो गया है और प्रसुप्त ही सही उसमें आत्मा के समस्त गुण विद्यमान है। जगत् के विकास में मार्क्स के आर्थिक तत्व के विपरीत अन्य समस्त तत्वों की अनिवार्यता पर बल देते हुए वे कहते हैं कि– ''जो मनुष्य समाज की गतिविधि का अध्ययन करना चाहता हो और उसमें सुधार करना चाहता हो, उसको आचार–विचार, कानून, शिक्षण, सामाजिक संगठन, शासन पद्धति, आर्थिक व्यवस्था सभी बातों पर ध्यान देना होगा। आर्थिक व्यवस्था का महत्व बहुत बड़ा है पर उसी को सब कुछ नहीं माना जा सकता।(सम्पूर्णानन्द,1936,पृ0299)

मार्क्स के वर्ग–संघर्ष के स्थान पर उन्होंने भारतीय समाजवाद में वर्गों के सहयोग पर बल दिया है। वे कहते हैं कि– 'वर्गों के मध्य हितों की टकराहट को भारतीय समाजवादी भी स्वीकार करता है। वह भी इस स्थिति को समाप्त करने का इच्छुक है, किन्तु किसी वर्ग को नष्ट करके वह इस लक्ष्य को नहीं पाना चाहता। वह मानता है कि एक औद्योगिक संस्थान को सफलतापूर्वक चलाने के लिए बहुत से लोगों का सहयोग और संगठित प्रयत्न चाहिए– व्यवस्थापक, इंजीनियर, क्लर्क, श्रमिक इत्यादि सबका सहयोग अपेक्षित है।(सम्पूर्णानन्द 1961 पृ010)

वे आगे कहते हैं कि भारतीय समाजवाद को यह सत्य विस्मृत नहीं करना है कि वर्गहीन समाज की स्थापना, शोषण का उन्मूलन, आत्मभिमान का पोषण, बेरोजगारी की समाप्ति, सबको उचित शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा–यह सब समाजवादी कार्यक्रम के महत्वपूर्ण अंग हैं और भारतीय समाजवाद, अन्य समाजवादी विचारधाराओं से, जिसमें कम्युनिस्ट भी है, इस सीमा तक सहमत है, किन्तु भारतीय समाजवाद के अनुसार व्यक्ति का अपना एक महत्व है। वही धुरी है, वही केन्द्रबिन्दु है। सामाजिक कल्याण और उन्नति केवल उपकरण है, साध्य नहीं। भारतीय समाजवाद नैतिक मूल्यों और सदाचार पर बल देगा, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति सत्य और अहिंसा में होती है। इन सिद्धान्तों का कठोर पालन कभी–कभी दुखद हो सकता है। ऐसे अवसर आ सकते हैं जब भौतिक प्रगति अवरुद्ध हो जाए और राजनीतिक उलझनें उठ खड़ी हों, किन्तु मानव जाति इस विश्वास के बल पर जीवित रह सकती है कि अन्तिम विजय उसी की होगी जो धर्म–विमुख नहीं होता तथा जो साधनों की श्रेष्ठता पर विश्वास करता है।(वही पृ029)

डॉ. सम्पूर्णानन्द ने लोकतांत्रिक समाजवाद पर भारत की परिस्थितियों के अनुसार निर्मित करने पर बल दिया है। वे कहते हैं कि 'हम भारतवासियों ने गणतन्त्रात्मक वातावरण में नियोजित विकास का कठिन श्रम अपने हाथ में लिया है। नियोजन कुछ अंश तक जीवन को नियन्त्रित करता है। इसको कार्यरूप में परिणत करने का काम जिस शासन के हाथों में होगा, वह जितना शक्तिशाली होगा, भौतिक अर्थों में नियोजन उतना ही सफल कहा जाएगा। वाद–विवाद और तर्क–वितर्क गणतन्त्र में अभिन्न अंग हैं और इस बात की बहुत सम्भावना है कि विकास की गति में इससे बाधा पड़े। प्रगति के पथ पर जल्दी बढ़ने की स्वाभाविक इच्छा के कारण यह भी असम्भव नहीं है कि हम वर्जनाओं की ऐसी दीवार खड़ी कर लें, जो गणतन्त्र को एकदम रोक दे।(वही पृ021) प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने के लिए निश्चित आयोजना की आवश्यकता है, नहीं तो हमारे सीमित साधन व्यर्थ हो जायेंगे। आयोजना का अर्थ कुछ युक्तियाँ अथवा कल्पनाएँ ही न होकर प्रगति की गति बढ़ाने का वह सुनियोजित दृष्टिकोण है जिससे समाज का सर्वतोमुखी विकास हो।

समाजवादी राज्य के रूप में विश्लेषण करते हुए डॉ. सम्पूर्णानन्द ने यह विश्वास व्यक्त किया है कि समाजवादी राज्य में अधिकारों की अपेक्षा कार्यों पर बल होगा और दूसरों के जीवन की सफलता में सहयोग देने के प्रयत्न उस श्रद्धा और सहिष्णुता की ओर ले जायेंगे जो धर्म का सार–तत्व है। यद्यपि भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है किन्तु अधार्मिकता और धार्मिक विश्वासों का उपहास करने की प्रवृत्ति प्रभावी धर्मनिरपेक्षता की सबसे बड़ी शत्रु है। विज्ञान की आड़ में धर्म की ओछी आलोचना आधुनिक विज्ञान से अपना अज्ञान प्रकट करना है। अतः राज्य में हमें सच्ची धर्मनिरपेक्षता को लागू करना होगा।(वही पृ036)

डॉ. सम्पूर्णानन्द नीति के मामले में बहुत स्पष्टवादी और क्रान्तिकारी विचारक रहे हैं। एक समाजवादी नेता होने के नाते उन्हें सारा देश जानता था, किन्तु वह उन लोगों में से नहीं थे जो समाजवाद को एक हवाई नारे के रूप में प्रयोग करते थे। उनके पास एक स्पष्ट दर्शन था और अर्थनीति के रूप में सुलझा कार्यक्रम।(सम्पूर्णानन्द, 1970 पृ018) उन्होंने भारतीय कुटीर उद्योग, कृषि, भारी उद्योगों, कृषक और श्रमिक वर्ग के उत्थान को ध्यान में रखते हुए अपनी अर्थनीति विकसित की। उनकी कल्पना का समाज कोरा आर्थिक समृद्धि का समाज न होकर आशावादिता, चारित्रिक संगठन और आध्यात्मिक उन्नति के लिए अग्रसर होता हुआ समाज था। सम्पूर्णानन्द जी ने कहा था कि सोशलिज्म केवल इकॉनॉमिक प्रोग्राम नहीं है। समाजवाद जीवन का एक दर्शन है। यदि हम सचमुच समाजवाद का कार्यक्रम बनाना चाहते हैं तो इसके लिए हमें यह भी देखना

चाहिए कि समाजवाद में व्यक्ति का क्या स्थान है, व्यक्ति और समाज का क्या सम्बन्ध है, व्यक्ति समाज के लिए है या समाज व्यक्ति के लिए?

डॉ. सम्पूर्णानन्द ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भारतीय धर्म, संस्कृति और उसके चिरंतन मूल्यों की विवेचना की है। उन्होंने धर्म, दर्शन और विज्ञान को मौलिक दृष्टि से देखा और समझा। परम्परावादी होने के नाते उनमें वह बौद्धिक चेतना, विचार–दर्शन और गुणग्राह्यता थी जो स्थितियों के अनुरूप परम्परा में अच्छा–बुरा क्या है, यह पहचान सकती है। आधुनिकता के मोह में उन्होंने उस उच्छृंखलता का समर्थन कभी नहीं किया जो साधारणतः परम्परा का विरोध करते हुए आज दिखाई पड़ती है। एक कट्टर हिन्दू होने के नाते वे अपने धर्म के प्रति पूर्ण आस्थावान दिखायी देते हैं। जहाँ वे कठोरतापूर्वक मान्यताओं और मूल्यों का पालन का आदेश देते हैं वहीं उतनी ही कट्टरता और कठोरता के साथ अनुपयोगी के प्रति असहमहति व्यक्त करते हुए उसे सड़े–गले को अपने से दूर हटाने के लिए भी कहते हैं, जिसने धर्म को बदनाम कर रखा है, जिसके कारण परम्परा रूढ़ि समझी जाने लगी है या जिस कारण जाति, देश, समाज और धर्म के मूल्यों को हानि पहुँचती है। उन्होंने पहले प्रत्येक परम्परा के अर्थ खोजे, उसकी आत्मा समझी और बाद में उसके निषेध या स्वीकार के लिए कहा।सम्पूर्णानन्द, गाँधी जी के चुम्बकीय व्यक्तित्व से प्रभावित थे और उनकी अहिंसक तकनीक के समर्थक थे। वे गाँधीवाद को समाज की एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था न मानकर एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन मानते थे। गाँधीवादी प्रभाव के कारण वे साम्यवादियों के तौर–तरीकों से असहमत थे। वे रक्तिम क्रान्ति के विरोधी थे और शान्तिपूर्ण साधनों में उनका पूर्ण विश्वास था।

भारत के समाजवादी लोकतंत्र में गहरी आस्था रखते हैं। सम्पूर्णानन्द ने इस विषय पर मौलिक ढंग से सोच–विचार किया है। उनकी धारणा है कि एशिया की परिस्थितियाँ पश्चिम से भिन्न हैं और भारत को अपने लिए नयी लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था की तलाश करनी चाहिए। वे ग्रामसमाज, जनशक्ति, पंचायतीराज, सत्ता का विकेन्द्रीकरण आदि पर विशेष बल देते हैं। उनका प्रजातांत्रिक समाजवाद–कुछ लोगों के हाथ में धन का केन्द्रीकरण हो, इसके विरुद्ध है और चाहता है कि साधनों का समान रूप से वितरण हो। हालाँकि वे पूर्ण समानता के हामी नहीं थे परन्तु इतना अवश्य चाहते थे कि देश के साधनों का न्यायपूर्ण वितरण हो, किसी के परिश्रम के फल का लाभ कोई दूसरा न उठाये। वे इस बात के आग्रही थे कि श्रमिक वर्ग को वाजिब मजदूरी, काम का निश्चित समय, बीमा, वृद्धावस्था के लिए पेंशन, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ आदि सामाजिक सुरक्षा अवश्य प्राप्त हो।

उनके अनुसार लोकतन्त्र तभी सफलतापूर्वक चल सकता है जब नागरिक शिक्षित हों और उनकी कर्त्तव्यबुद्धि उदात्त हो। साथ ही इसके लिए राजनीति के गम्भीर अध्ययन और प्रशिक्षण की भी आवश्यकता है। जनता के हित के लिए जनता के शासन का अर्थ यह नहीं है कि जनता स्वयं शासन करे। अपितु जनता के जो प्रतिनिधि सरकार बनाने के लिए चुने जायँ, उनकी योग्यता का मापदण्ड यह भी होना चाहिए कि उन्होंने कुछ लोकसेवा की है या नहीं। लोकतन्त्र शासन की कुछ विशेषताएँ हैं, जो उसको अन्य व्यवस्थाओं से पृथक करती है। लोकतंत्र किसी विशेष प्रकार की शासन व्यवस्था का ही नाम है, वह विशेष प्रकार की मनोवृत्ति का प्रतीक है। यदि हम मनोवृत्ति ढीली हुई तो अच्छा से अच्छा लोकतान्त्रिक संविधान देर तक नहीं टिक सकता।(सम्पूर्णानन्द, 1962 पृ0228)

इस प्रकार डॉ. सम्पूर्णानन्द समर्पित देशभक्त तथा सहृदय राजनीतिज्ञ होने के साथ ही उदाचेता शिक्षाविद्, सुविज्ञ लेखक तथा बहुआयामी प्रतिभा के धनी समाजवादी चिन्तक एवं विचारक थे। भारतीय संस्कृति के अनुयायी तथा प्राचीन जीवन मूल्यों के पक्षधर होते हुए भी वे वैज्ञानिक विकास के समर्थक थे। उनके मन में स्वाधीन भारत को लेकर जो परिकल्पना थी वह समाजवादी व्यवस्था पर आधारित एक आदर्श देश की कल्पना थी और इसी कल्पना ने उन्हें 'समाजवाद' नाम पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया था। वह चाहते थे कि भारत समाजवाद के नाम पर दूसरे देशों का पिछलग्गू न बने, बल्कि भारतीय परिवेश तथा भारतीय जीवन दर्शन को देखते हुए 'समाजवाद' का स्वतन्त्र रूप विकसित करे।

सन्दर्भ

सम्पूर्णानन्द (1936) *'समाजवाद'* वाराणसी, काशी विद्यापीठ,

सम्पूर्णानन्द (1961) *'भारतीय समाजवाद'*, बाम्बे, एशिया पब्लिशिंग हाइस

सम्पूर्णानन्द (1962) *'कुछ स्मृतियाँ और कुछ स्फुट विचार'*, दिल्ली, ज्ञानमंडल

सम्पूर्णानन्द (1970) *'समाजवाद, प्रशासन और हम'*, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

सम्पूर्णानन्द(1962) *'समिधा'*, लखनऊ, सूचना एवम् जनसंपर्क विभाग

सुधान्शु श्रीवास्तव, *दैनिक पत्र आज,* 19 जनवरी, 1969